आधुनिक संदर्भों में भगवद्गीता की प्रासंगिकता

सम्पादक

डॉ. बाल कृष्ण प्रजापति

सह सम्पादक

डॉ. अनामिका प्रजापति

श्रीमद्भगवद्गीता द्वारा सामाजिक समरसता

जानकीशरण दास
अध्यक्ष – दर्शन संकाय
श्रीसोमनाथ संस्कृत विश्वविद्यालय
वेरावल गीर–सोमनाथ (गुजरात)

सामाजिक असमरसता की पूर्वभूमिका –

भारत में जातिवाद से सम्बन्धित संघर्ष आए दिन होता ही रहता है। अभी हाल ही में ५ अगस्त २०१५ के अखबारों में सुर्खिया थीं कि हरियाणा में हिसार जिले के भागना गांव में जातिवाद के कारण एक सौ के करीब पिछड़ी जाति के परिवारों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। इस विषय में अखबारों ने परस्पर एक–दूसरे को इस घटना का जिम्मेदार ठहराते हुए खूब कलम घिसी। कुछ लोगों ने जातिवाद के कारण दलितों के इस्लाम, ईसाई या बौद्ध धर्म में चले जाने को उचित ठहराया, तो किसी ने अनुचित। इसी तरह राजस्थान में गुर्जर समाज का आरक्षण के लिये आन्दोलन कटुता, वैमनस्य और हिंसा की आग में घिर गया था। जाति आधारित आरक्षण की माँग को लेकर हमेशा शान्त रहने वाला गुजरात प्रदेश भी आरक्षण की आग में जल उठा। इस तरह अन्य राज्यों में भी जातिवाद के कारण खूनी संघर्ष आये दिन होता रहता है। जाति आधारित संघर्ष देखकर तो ऐसा लग रहा है कि यहां हर कोई भारतीय अलग होना चाहता है। अपनों से दूर, अपने आप से दूर, किसी अलग ही फितूर का शिकार हो गया है। हिन्दू समाज के पंथ और उपपंथ कितनी मुश्किल से कभी–कभार किसी एक मंच पर आते हैं लेकिन हिन्दू मन का आहत स्वर विखंडित ही रहा है।

इस आरक्षण का दूसरा पहलू जातिवाद के रूप में सामने आता है। जहाँ सामान्य वर्ग के छात्र को अच्छी शिक्षा पाने के लिये, सरकारी नौकरी पाने के लिये जी तोड़ मेहनत करनी पड़ती है। वहीं जाति के आधार पर कम योग्यता वाले भी योग्य व्यक्तियों का हक ले जा रहे हैं। हालांकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जाति के आधार पर आरक्षण सामाजिक असमानता की खाई

को पाटने तथा सदियों से पिछड़े लोगों को समानता का अवसर देने के लिये १० वर्षों के लिए किया गया था पर आज तक आरक्षण भी यह व्यवस्था अनवरत लागू हैं जिसके सामाजिक और आर्थिक दुष्परिणाम धीरे–धीरे सामने आ रहे हैं। हर भारतीय को हक है कि वह किसी जाति, वर्ण और धर्म के आधार पर भेदभाव के बिना शिक्षा और व्यवसाय के क्षेत्र में आगे बढ़नें के अवसर पाए। जिन वर्गों के साथ सामाजिक एवं धार्मिक अन्याय हुआ हो, जैसे अनुसूचित जातियां और जनजातियां, उनका संविधान के अन्तर्गत आरक्षण के रूप में विशेष व्यवहार भी हमेशा के लिए बहुत स्थाई कभी माना ही नहीं गया था। क्योंकि बैसाखी स्वस्थ होने तक के लिए ही आवश्यक होती है। लेकिन अब आरक्षण विभिन्न जातियों को वास्तविक लाभ पहुंचाने की बजाय सत्ता स्वार्थ पूरा करने का एक समाज–तोड़क हथियार बनता जा रहा है और विडम्बना यह है कि कोई भी राजनीतिक दल केवल और केवल वोट बैंक खोने के कृत्रिम भय से इस विद्रूपता के विरुद्ध बोलने का साहस नहीं कर रहा है।

आज यह आरक्षण वंचितों को समान अधिकार दिलाने के बजाय योग्य व्यक्तियों की योग्यता को दरकिनार कर अयोग्यों को शीर्ष पर पहुँचाने और जातिवाद का जहर घोलने का काम कर रहा है। आज आरक्षण राजनैतिक दलों के लिए वोट पाने का एक अस्त्र बन चुका है और हर राजनैतिक दल इस अवसरवादी व तुष्टिकरण की राजनीति में निपुण है। आज राष्ट्र जातियों के नाम पर इस कदर विभाजित है कि शादी–विवाह और सामाजिक लेन–देन के मामले में विभिन्न जातियों वाले एक–दूसरे से दूर ही नहीं भागते, अपितु उन्हें सामाजिक शत्रु की तरह समझते हैं। भारतीय समाज को विभाजित रखने के उद्देश्य से ब्रिटिश राज में उनके कर्मचारियों द्वारा हिंदुओं को तकरीबन २,३७८ जातियों में विभाजित कर दिया गया। इतना ही नहीं १८९१ की जनगणना में केवल चमार की ही लगभग ११५६ उपजातियों को रिकार्ड किया गया। इसी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि आज तक कितनी जातियां–उपजातियां बनाई जा चुकी होगी। आज भारत की जनगणना के अनुसार देश में लगभग एक हजार से अधिक जातियाँ था एक लाख से अधिक उपजातियाँ हैं। जाति आधारित वोट बैंक राजनीति के सामने सामाजिक एकता की बात कितनी बेमानी हो चली है, यह आरक्षण के लिये

किये गये वर्तमान आन्दोलनों से एक बार फिर रेखांकित हुआ। जातिवाद के कारण इसी विषमता का फायदा धर्मान्तरण करवाने वाली लॉबी उठाती है, जो वंचितों को सब्जबाग दिखाकर देश को विभाजित करने का काम कर रही हैं। हालांकि वंचितों का किसी और धर्म को अपना लेना जातिवाद के कोढ से निजात पाने का उचित उपाय नहीं है। धर्मपरिवर्तन हमेशा सामाजिक स्तर पर विखंडनकारी साबित हुआ है।

जाति और वर्ण की व्यवस्था –

ऋग्वेद का पुरुष सूक्त चार वर्ण की चर्चा करता है लेकिन जन्म पर आधारित जाति की नहीं। मनुस्मृति में चार वर्ण को जन्म पर आधारित मान कर चार वर्णों को जाति में बदल देने की व्यवस्था मिलती है। ऋग्वेद, रामायण एवं श्रीमद्भगवद्गीता जैसे आर्ष ग्रन्थों में जन्म के आधार पर जाति, ऊँची व नीची जाति का वर्गीकरण, अछूत व दलित की अवधारणा को ही वर्जित किया गया है। जन्म के आधार पर जाति का निर्धारण प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में नहीं मिलता है। अपितु गुण और कर्म के आधार पर वर्ण के निर्धारण के विषय में ऋग्वेद के पुरुष–सूक्त (१०/९०–१२) व श्रीमद्भगवद्गीता के ४/१३, १८/४१ इत्यादि श्लोक प्रमाण हैं। अगर ऋग्वेद की ऋचाओं व गीता के श्लोकों को गौर से पढ़ा जाए तथा भगवान् राम तथा कृष्ण द्वारा स्थापित मानदण्डों का अनुसरण किया जाय तो साफ परिलक्षित होता है कि जन्म–आधारित जाति व्यवस्था का कोई शास्त्रीय आधार नहीं है।

हिन्दू धर्म ग्रन्थों के अनुसार समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र – इन चार वर्णों में विभक्त किया गया है। प्रारम्भ में यह विभाजन कर्म आधारित था लेकिन बाद में यह जन्म आधारित हो गया। प्राचीनकाल में विभिन्न समुदायों के लोगों के गुण और कर्म के आधार पर वर्ण निर्धारित होता था। ब्राह्मण वर्ण का कार्य शास्त्र अध्ययन, वेदपाठ तथा यज्ञ कराना होता था, क्षत्रिय वर्ण युद्ध तथा राजकीय कार्यों का उत्तरदायित्व सम्भालते थे। वैश्य वर्ण व्यापार तथा शूद्र वर्ण सेवा प्रदान करने का कार्य करता था। भारतीय परम्परा में वर्ण शब्द का प्राचीनतम उल्लेख यजुर्वेद के ३१वें अध्याय में मिलता है, किन्तु यह वर्तमान काल में प्रचलित जाति शब्द के अर्थ से बिल्कुल भिन्न था।

सनातन धर्म में वेद, रामायण और गीता, ये तीन धार्मिक पुस्तकें ही सर्वोपरि हैं। बाकी सभी ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराण, सूत्र साहित्य और स्मृतिग्रन्थ, टिप्पणियां, विवरणिकाएं, व्याख्यान, भाष्य आदि इन मूल ग्रन्थों पर ही आधारित है। मूल ग्रन्थों के इतर इनका स्वतन्त्र प्रामाण्य नहीं है। उदाहरण के लिए मनुस्मृति (२/६) के श्लोक "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" में कहा गया है कि वेद ही सर्वोच्च और प्रथम प्राधिकृत है। मनुस्मृति (२/१३) के "धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः" इस श्लोक में भी वेदों की सर्वोच्चता को स्वीकारते हुये कहा गया है कि कानून श्रुति अर्थात् वेद है। ऐसे में तार्किक रूप से कहा जा सकता है कि मनुस्मृति की जो बातें वेदों की बातों का खण्डन करती हैं, वह अप्रामाणिक ही हैं। महर्षि वेद व्यास ने स्वयं लिखा है–

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते।
तत्र श्रौतं प्रमाणन्तु तयोद्वैधे स्मृतिर्वरा।। (महाभारत १/५/४)

अर्थात् जहां कहीं भी वेदों और दूसरे ग्रन्थों में विरोध प्रतीत होता हो, वहाँ वेद की बात ही मान्य होगी।

यजुर्वेद के पुरुषसूक्त में वर्णन आता है कि संकल्प द्वारा प्रकट हुए जिस विराट पुरुष का ज्ञानीजन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं, वे उसकी कितने प्रकार से कल्पना करते हैं ? उसका मुख क्या है ? भुजा, जाघें और पाँव कौन–से हैं ? शरीर–संरचना में वह पुरुष किस प्रकार पूर्ण बना ?

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा उच्येते।।

(शुक्ल यजुर्वेद, ३१/११)

इस प्रकार की जिज्ञासा कर विराट पुरुष का मुख ब्राह्मण अर्थात् ज्ञानी–विवेकवान जन हुए। क्षत्रिय अर्थात पराक्रमी व्यक्ति, उसके शरीर में विद्यमान बाहुओं के समान हैं। वैश्य अर्थात् पोषणशक्ति–सम्पन्न व्यक्ति उसके जंघा एवं सेवाधर्मी व्यक्ति उसके पैर हुए, इस प्रकार पुरुष सूक्त में कहा गया है।

इस श्लोक को तोड़–मरोड़ कर आध्यात्मिक अर्थ को समझे बिना एच. एच विल्सन ने इस प्रकार अनुवाद किया है – पुरुष का मुख ब्राह्मण

बना, बाहु क्षत्रिय एवं जंघा वैश्य बना एवं चरण से शूदों की उत्पत्ति हुई, इस तरह का अर्थ किया है। ठीक इसी श्लोक का अनुवाद ग्रिफिथ ने कुछ अलग तरह से ऐसे किया है–पुरुष के मुख में ब्राह्मण, बाहू में क्षत्रिय, जंघा में वैश्य और पैर में शूद्र का निवास है। इसी बात को अनुवांशिक बनाने के लिए मनुस्मृति में इस प्रकार लिखा गया कि ब्राह्मणों की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से हुई है, इसलिए वह सर्वश्रेष्ठ है तथा शूद्रों की उत्पत्ति ब्रह्मा के पैर से हुई है इसलिए वह सबसे निकृष्ट और अपवित्र है। मनुस्मृति के "ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः। यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चौव मलाश्च्युताः" (५/१३२) श्लोक में कहा गया है कि शरीर में नाभि के ऊपर का हिस्सा पवित्र है जबकि नाभि से नीचे का हिस्सा अपवित्र है। जबकि ऋग्वेद में इस तरह का कोई विभाजन नहीं है। मनुस्मृति (१/३१) के अनुसार ब्रह्मा ने लोगों के कल्याण के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का क्रमशः मुख, बाहू, जंघा और पैर से निर्माण किया। जबकि ऋग्वेद के पुरुष सूक्त की मूल भावना के ठीक उलट हैं। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त (१०/९०/११–१२) में ऋषि ने सरल तरीके से यह बताया हैं कि यदि किसी व्यक्ति के मुख, बाहू, जंघा और पैर सभी अंग मिलकर एक अंगी शरीर का निर्माण करते है। यदि इन सभी अंगों को अलग कर दिया जाए तो वह ब्रह्मा ही क्यों न हो, मर जाएगा। मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थों की इस तरह की जन्मना जाति आधारित व्याख्या द्वारा वेदों की मूल भावना को तोड़ मरोड़ कर पेश करने के कारण भारतीय समाज को विभाजित होकर सैंकड़ों वर्ष गुलामी की बेड़ियों में जकड़े रहना पड़ा। इसके कारण आज भी भारतीय समाज अन्दर से जाति के आधार पर विभाजित हो रहा है और यहां तक कि एक–दूसरे से लड़ने को भी तैयार है। कुछ लोगों को समाज से बाहर रहने की बंदिश लगा कर एक तरह से सनातन धर्म के पैर को काट दिया है, जिससे सनातन धर्म का ह्रास हो रहा है।

भगवद्गीता के माध्यम से सामाजिक समरसता –

जातिप्रथा के इस विखण्डित करने वाले परिणाम से भारतीय समाज श्रीमद्भगवद्गीता का अनुसरण कर निजात पा सकता है और साथ–साथ अपनी राजनीतिक और सैनिक कमजोरी से भी। भारतीय समाज के लिये

सर्वोपरि धर्मग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता ही है। इसी कारण न्यायिक प्रक्रिया आदि में भी साक्षी के रूप में जाने वाले सनातन धर्मी को भगवद्गीता पर हाथ रखकर शपथ ग्रहण कराने का विधान है।

जातिवाद से उत्पन्न सामाजिक असमानता से छुटकारा पाने के लिए सबसे पहले तो हमें मनुस्मृति को वेद के समकक्ष नहीं रखना चाहिए। भगवद्गीता के अनुसार लोगों को यह समझाना होगा कि आरम्भ के धर्मशास्त्रों में जाति का कोई प्रावधान नहीं था, न ही वेदों में जातिवाद की वकालत की गई है। वर्ण व्यवस्था सनातन धर्म के अनुकूल है, जबकि जाति सनातन धर्म के विरुद्ध है। जातिवाद ऐसा कचरा है जो काल की कलुषता के कारण तथा अशिक्षा व अन्य कारणों से सनातन धर्म के आसपास लग गया है। इसके उन्मूलन के लिए किसी भी तरह की सोशल इंजिनीयरिंग या जातीय युद्ध की जरूरत नहीं है। इसके लिए तो बस ईमानदारी से वेद की ऋचाओं तथा श्रीमद्भगवद्गीता के २/१३ श्लोक का अनुसरण तथा श्रीराम एवं श्री कृष्ण द्वारा स्थापित आदर्शों का अनुकरण आवश्यक है।

जातिवाद के समर्थन के लिये लोग प्रायः श्रीमद् भगवद् गीता में जन्म के आधार पर चार वर्णों के उल्लेख को लेकर जातियों के समर्थक दो श्लोकों (४/१३ व १८/४१) का प्रायः उदाहरण दिया करते है। आइए इसका विश्लेषण करे। श्लोक (४/१३) में भगवान् श्रीकृष्ण कहते है कि "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः' अर्थात् गुण और कर्म के आधार पर मेरे द्वारा समाज को चार वर्णों में विभक्त किया गया है। यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण पिछले जन्म के गुण व कर्म के बारें में नहीं बता रहे हैं। वर्ण जन्म प्रधान है अथवा गुण और कर्मों का आधार पर पायी जाने वाली योग्यता? इस प्रश्न पर गीता का समाधान इस प्रकार है –

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।। (गीता १८/४१)

यहाँ इस श्लोक का अर्थ यह है कि वर्तमान जीवन में लोगों को कर्म व स्वभाव के आधार पर उन्हें चार वर्णों में विभक्त किया गया है। श्रमिकों को चार वर्गों – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र में विभक्त किया गया है, जो मनुष्यों की स्वाभाविक प्रकृति पर आधारित है। क्या यह विभाजन जन्म पर आधारित

है? कदापि नहीं, क्योंकि भगवान् कृष्ण ने इस श्लोक में ही 'कर्माणि प्रविभक्तानि' इस वाक्य के द्वारा इसका स्पष्टीकरण कर दिया है। गुणों की योग्यता से कर्म को चार सोपानों में बाँटा। यहाँ गुण एक पैमाना है, उसके द्वारा मापकर कर्म करने की क्षमता को चार भागों में बाँटा। इसके अगले श्लोक (१८/४२) में भगवान् कृष्ण ने ब्राह्मण की जो परिभाषा निर्धारित की है, उसमें कहा गया है कि वह स्वयं तो वेदों का अध्ययन करे ही साथ दूसरों को अपने ज्ञान से लाभान्वित करे। वह व्यक्ति जिसने वेदों का अध्ययन नहीं किया, न ही दूसरों को वेदों का अध्यापन करवाया है, वह ब्राह्मण की परिभाषा पूर्ण नहीं है।

श्रीमद्भगवद्गीतोक्त ब्राह्मणत्त्व को वैसे ही अपने प्रयास से प्राप्त किया जाता है, जैसे वर्तमान में एम. ए., एमबीबीएस आदि की डिग्री प्राप्त करते हैं। जन्म के आधार पर एक शिक्षक के पुत्र को शिक्षक एक इंजीनियर के पुत्र को इंजीनियर नहीं कहा जा सकता है, उसी प्रकार से एक आईएएस अधिकारी के पुत्र को आईएएस अधिकारी नहीं कहा जा सकता है, जब तक की वह अर्हता सम्बन्धी परीक्षा पास न कर ले। अतः ब्राह्मण वही है, जो कि गीता में वर्णित परिभाषा को पूरा करें। गीता के अनुसार कोई भी जन्म से ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय और शूद्र नहीं है। भगवद्गीता के इन दो श्लोकों (१८/४१–४२) का मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक दृष्टि से विश्लेषण किया जाय तो पता चलता है कि सनातन धर्म एक मिशनरी धर्म है जहाँ ब्राह्मणों अर्थात् शिक्षित वर्ग का एक कर्त्तव्य यह है कि वह दूसरों को वेदों का अध्यापन करवाये और उसे प्रचारित करें।

केवल वही लोग, जो सबसे ज्यादा मुझे चाहते है, जो मेरे भक्तों के बीच गीता के उपदेशों को प्रचारित करते हैं, मेरे सबसे करीब होते है, यह निर्विवाद सत्य है। समूचे सृष्टि में ऐसे लोगों द्वारा मेरी सबसे बड़ी सेवा है, उस सेवा का मुकाबला कोई दूसरा नहीं कर सकता और ऐसे लोग ही मेरे सबसे प्रिय होंगे, उतना प्रिय कोई दूसरा नहीं होगा। इन दो श्लोकों में भगवान् श्रीकृष्ण ने पुनः कर्तव्य का उल्लेख करते हुए कहा है कि एक धार्मिक ध्वज के तले सभी के बीच सद्भाव कायम रखना हमारा परम कर्तव्य है, जिसका हमें अवश्य पालन करना चाहिए। यहाँ श्रीमद्भगवद्गीता ऋग्वेद के उपदेश (१०/१९१) के अनुसार, हमें सामाजिक समरसता लाने के लिए किसी

एक को तैयार कर और सभी को उसकी अगुवाई में एक धार्मिक बैनर के तले एकत्रित करने का संकेत कर रही हैं। पूर्वोक्त गीता के दो श्लोक (१८/६८–६९) सनातन धर्म के मिशनरी रूप की पुष्टि करते हैं। श्लोक (१०/२०) में भगवान् कृष्ण ने कहा है, 'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः' अर्थात् 'हे अर्जुन! मैं सर्वव्यापी व सभी के हृदय में विद्यमान हूँ।' यहां भगवान् स्वयं सभी मानव के हृदय में भी विराजते हैं, ऐसा कहते हैं तो फिर कोई छूत और कोई अछूत कैसे हो सकता है। पुनः यही भावना श्लोक १८/६१, १४/४ में भी अभिव्यक्त की गयी है। श्लोक (१६/१८) में भगवान् कृष्ण कहते हैं, 'जो लोग अहं, क्रूरता, घमंड आदि दुर्गुणों को अपने शरीर में स्थान देते हैं और इसका उपयोग दूसरों पर करते हैं, वो वस्तुतः मुझसे घृणा करते हैं।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्।। (गीता १८/७१)

उपरोक्त श्लोक में भगवान् कृष्ण मानव मात्र के लिए अपना दरवाजा खुला रखने की बात करते हुए कहते हैं, वह मनुष्य जो पवित्र गीता के उपदेशों को आदर के साथ सुनता है वह पुण्यात्मा श्रेष्ठ एवं शुभलोक में प्रवेश पाता है। भगवान् का वाक्य सामाजिक समरसता का आधार हैं। मोक्ष चाहने वाले बुद्धिमान ज्ञानीजन, जो ज्ञान व संस्कृत के जानकार होते हैं, एक गाय और एक चाण्डाल के प्रति समान दृष्टि अपनाते हैं। अतः जो स्वयं के इतर अन्य को हेय दृष्टि से देखते हैं वे न तो बुद्धिमान हैं और न ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

अतः श्रीमद्भगवद्गीता ही भारतीय समाज के लिये मूल मनुस्मृति है और भगवान् श्रीकृष्ण के अनुसार गीता ही धर्मशास्त्र है। समाज में प्रचलित अनेकानेक स्मृतियाँ गीता के विस्मृत हो जाने का दुष्परिणाम हैं। ये स्मृतियाँ कतिपय राजाओं के संरक्षण में शासन व्यवस्था और राज–काज, प्रशासन चलाने के लिये लिखी गयीं, जिनसे कालान्तर में समाज में ऊँच–नीच की दीवारें सृजित हो गयीं और समाज का विभाजन होता चला गया। अतः श्रीमद्भगवद्गीता मानव मात्र को "प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते" (गीता, १/२०) के अनुसार सामाजिक समारसता का सन्देश देते हुये मानव को महामानव बनाती है।